ओ३म्

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

संशोधक व अनुवादक
स्व. भगवद्दत्त बी. ए.
रिसर्च स्कॉलर

सम्पादक
डा. धर्मवीर

प्रकाशक
परोपकारिणी सभा
दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर

ओ३म्

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

अर्थात्

अथर्ववेद का तृतीय लक्षण ग्रन्थ।
भावानुवाद-सहित।
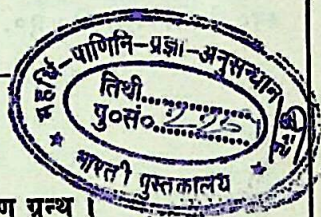
संशोधक व अनुवादक
स्व. भगवद्दत्त बी. ए.
रिसर्च स्कॉलर

सम्पादक
धर्मवीर

आर्य्य सम्वत् १९६०८५३०८९
विक्रम सं० २०४७ सन् १९९० ई०
दयानन्दाब्द १६७
प्रथमवार १००० प्रति] [मूल्य २५) रु०

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

संशोधक व अनुवादक
स्व० पं० भगवद्दत्त बी० ए०, रिसर्चस्कॉलर

सम्पादक
धर्मवीर

प्रकाशक
परोपकारिणी सभा
दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर

मूल्य : २५) रुपये

संस्करण १९९० ई.

प्राप्ति स्थल :
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर

मुद्रक :
वैदिक यंत्रालय, अजमेर
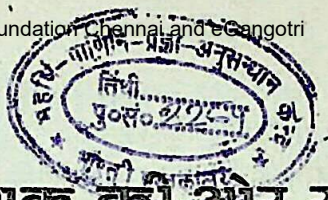
प्रकाशक की ओर से

परोपकारिणी सभा की स्थापना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुये स्वामी दयानन्दजी महाराज ने वेदों के पठन-पाठन, प्रकाशन, व्याख्यान को प्रथमत: घोषित किया है। पठन पाठन के लिये पुस्तक का सुलभ होना तथा पाठकीय स्तर के अनुरूप उस विषय का प्रतिपादन करना भी आवश्यक है। इस प्रकार व्याख्यान और प्रकाशन से ही पठन-पाठन संभव तथा सार्थक हो सकता है। पठन पाठन को समाज के लिये आर्यसमाज के तृतीय नियम द्वारा अनिवार्य किया व उसे परम धर्म कहा है, उस परम धर्म की सहायता और सार्थकता का दायित्व परोपकारिणी सभा पर डाला है। आज साहित्य मंहगा होने से पाठकों से दूर हो गया है वैदिक साहित्य के साथ तो अधिक संकट है। प्रथम तो पाठक ही सुलभ नहीं, फिर पुस्तक की दुर्लभता इस सीमा तक बढ़ गई है कि पाठक महत्वपूर्ण ग्रन्थों के नाम से भी अपरिचित हो गया है। ऐसी परिस्थिति में सभा ने निश्चय किया है कि इस कार्य को सभा अपने सीमित साधनों के रहते हुये भी प्राथमिकता के आधार पर करेगी। इस क्रम में पाठकों की सेवा में यह ग्रन्थ प्रस्तुत है।

—गजानन्द आर्य

मंत्री, परोपकारिणी सभा

सम्पादकीय

आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में अथर्ववेद एक समस्या वेद है। इस विषय में वे जितनी कल्पनाएँ कर सकते थे उन सभी को उन्होंने पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थित किया है और इन सबको अनुत्तरित स्वीकार करते हुए अथर्ववेद एक अर्वाचीन रचना है। यह निष्कर्ष निकाल लिया परन्तु भारतीय संस्कृति से थोड़ा भी परिचय रखने वाले भली प्रकार जानते हैं, आधुनिक लोगों की इस धारणा को स्वीकार करने का अर्थ है ऋषि परम्परा को अमान्य करना जो हमारे साहित्य और संस्कृति का मूल आधार है जिसके अनुसार वैदिक काल से ऋषि दयानन्द पर्यन्त वेद संहिताएँ चार हैं। इनका अवतरण काल भी एक है और यह ईश्वर प्रदत्त ज्ञान के कारण अपौरुषेय ग्रंथ है। अतः किसी वेद के बारे में यह कहना इस वेद में अमुक वेद के मन्त्र लिए गये हैं यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

कालक्रम से वेदज्ञान का ह्रास हुआ। स्वार्थी उदरम्भरी लोगों ने वैदिक कर्मकाण्ड को अपनी इच्छापूर्ति का साधन बना लिया। जहाँ यज्ञ पद्धति भ्रष्ट हो गई वहीं केवल यजुर्वेद का पठन पाठन प्रचलन में शेष रहा और अन्य वेदों का स्वाध्याय समाज से लुप्त हो गया। जैसा कि निरुक्त में आचार्य यास्क ने उल्लेख किया है प्रारम्भिक ऋषियों के बुद्धिवैशद्य का स्थान अवरकाल के लोगों के बुद्धि वैषम्य ने ले लिया था। ऐसे लोगों को वेदार्थ से अवगत कराने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की और वेदाङ्गों की रचना की गई।

साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभुवुस्तेऽवरेभ्योऽ साक्षात्कृत धर्मभ्यो उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्म ग्रहणाये ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च। —निरुक्त १।६

वेदाङ्गों की भाँति प्रत्येक वेद के अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए विशेष प्रकार के ग्रन्थ प्रत्येक वेद के विषय में रचे गये, इन ग्रन्थों को लक्षणग्रन्थ कहते हैं। लक्षण ग्रन्थ को भली प्रकार समझे बिना लक्ष्य ग्रन्थों=वेद को नहीं समझा जा सकता।

आधुनिक समय में वैदिक साहित्य की खोज करने वाले विद्वानों को इसका प्रथम उल्लेख पण्डित शङ्कर पाण्डुरङ्ग के कार्य में मिलता है। इन्होंने सायण भाष्य सहित अथर्ववेद का सम्पादन किया था और इस कार्य में पञ्चपटलिका की पर्याप्त सहायता ली थी।

बाद के विद्वानों में ह्विटनी ने अपने अथर्ववेदानुवाद की भूमिका में इसका उल्लेख किया है। इसी उल्लेख में इस ग्रन्थ का परिचय आर्यसमाज के मूर्धन्य शोधकर्ता पं. भगवद्दत्तजी को हुआ और उन्होंने लाहौर में रहते हुए भाण्डारकर शोध संस्थान से इस पुस्तक को प्राप्त किया था और सम्पादित कर डी. ए. वी. कॉलेज के अनुसन्धान विभाग की ओर से प्रकाशित कराया था।

यह ग्रन्थ १९२० में सीमित संख्या में छपा था और आजकल अप्राप्य था। गत दिनों पुरातत्त्व के विद्वान् पं. विरजानन्दजी के साथ हस्तलेख की खोज करते हुये मथुरा जाने का अवसर मिला। रविवार को आर्यसमाज मथुरा में प्रवचन किया और पश्चात् वहाँ के अधिकारियों से पुस्तकालय दिखाने की प्रार्थना की। उस प्रसंग में आर्यसमाज मथुरा के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ का साक्षात् हुआ, हमारे आग्रह को स्वीकार करते हुये कुछ समय के लिये यह ग्रन्थ अधिकारियों ने हमें देना स्वीकार किया। हम आभारी हैं।

साथ ही संन्यासीद्वय सभा प्रधान वीतराग स्वामी सर्वानन्दजी महाराज तथा कार्यकर्त्ता प्रधान स्वामी ओमानन्दजी महाराज के आशीर्वाद तथा सभा मन्त्री श्री गजानन्द आर्य की निरन्तर प्रेरणा और प्रोत्साहन से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। आशा है इन दीर्घ दृष्टि महानुभावों के मार्गदर्शन में सभा अपने उद्देश्य में निरन्तर प्रगति कर सकेगी।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः

पाठकों की सेवा में ग्रन्थ प्रस्तुत है। पाठकों से इस प्रकार के साहित्य की खोज, संरक्षण व प्रकाशन में सहयोग के साथ उनकी सम्मतियों की अपेक्षा रहेगी।

—धर्मवीर

ओ३म्

ग्रन्थ के सम्बन्ध में

□ पं. भगवद्दत्त

आधुनिक काल में अथर्ववेदीय पञ्च पटलिका के विषय आदिकों का सबसे प्रथम सुविस्तृतोल्लेख पण्डित शङ्करपाण्डुरङ्ग का है। उन्होंने सायणभाष्य-सहित अथर्ववेद के सम्पादन में इस से पर्याप्त सहायता ली थी। तदनन्तर व्हिटने ने स्वोल्लिखित अथर्ववेदानुवाद की भूमिका में इसका उद्धरण किया है।

हस्तलिखित वा प्रकाशित प्राप्त-सामग्री

(अ) यह ग्रन्थ भण्डारकर अनुसन्धान समिति का है। उन के सन् १९१६ के सूचीपत्रानुसार इसकी संख्या ४०० है। इस संख्यान्तर्गत ग्रन्थ में आठ भिन्न-भिन्न पुस्तक हैं। उनमें पञ्च-पटलिका चतुर्थ स्थान पर है। इसका आरम्भ है पत्र ४८ से और समाप्ति है पत्र ५६ पर। इसके लेखन कालादि के विषय में अंतिम पुस्तक की समाप्ति पर यह वचन मिलता है—

"संवत् १७१७ वर्षे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे ११ रविवासरे अद्ये श्री अनहलपुर पत्तनमध्ये वास्तव्यं आभ्यंतर नागर ज्ञातीय पञ्चोली सोमजीसुत बृहस्पति जी पठनार्थं ।। शुभं भवतु। कल्याणमस्तु ।। श्री ।। ।। श्री ।। ।। श्री ।। ।।"

यह पुस्तक स्पष्टाक्षरों में बहुत शुद्ध लिखा हुआ है।

(ब) पूर्वोक्त सूचीपत्र में इसकी संख्या ३९९ है। इस ग्रन्थ में इसके साथ तीन अन्य पुस्तकें हैं। स्थान इस का प्रथम और पत्र १—१० तक हैं। सूचीपत्र में लिखा है "The ms comes from Bikaner" अर्थात् हस्तलेख बीकानेर से आया है। यह इतना शुद्ध नहीं। कई स्थलों में बिन्दु दिये होने से प्रतीत होता है कि यह प्रतिलिपि किसी अति प्राचीन और कहीं-कहीं कृमिभुक्त पुस्तक से की गई है। इस ग्रन्थ के अन्त में कोई तिथि नहीं दी गई है। आकृति से यह लगभग तीन चौथाई शताब्दी का प्रतीत होता है।

'अ' और 'ब' दोनों पुस्तकों का संशोधन हड़ताल से किया गया है।

यह 'अ', 'ब' दोनों पुस्तक किसी एक से वा एक प्रकृति वाले पुराने ग्रन्थों से नकल किए गये हैं। कारण कि दोनों में प्राय: एक-सी अशुद्धियाँ, एक-सा लेख और एक से ही अक्षर छूटे हैं। यह बात मुद्रितपुस्तक के नीचे दिये हुए पाठभेदों के देखने से स्पष्ट ज्ञात होगी। यदि यह एक ही ग्रन्थ से नकल किए गये हैं तो यह कहना निरर्थक है कि 'अ' बहुत पहले नकल किया गया था और 'ब' बहुत पीछे। निश्चय ही 'ब' के लिखे जाने के समय मूलपुस्तक कृमिभुक्त हो गया था या फट रहा था, क्योंकि जैसा पहले कहा गया है 'ब' में बहुधा बिन्दु आते हैं।

(व्ह) व्हिटने महाशय ने लण्डन ब्रिटिश अद्भुतालय से अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी नकल की थी। उसका संशोधन उन्होंने एक बर्लिन के हस्तलेख से किया था। उसमें पञ्चपटलिका के पाठ भी कई स्थलों पर उद्धृत किए गये हैं। वही पाठ व्हिटने रचित अथर्ववेदानुवाद के प्रत्येक अनुवाक की समाप्ति पर मिलते

हैं। ये उद्धरण चतुर्थ और पञ्चमपटल के ही हैं। इनका पाठ कई स्थलों पर बहुत भ्रष्ट है।

(श) पण्डित शङ्करपाण्डुरङ्ग ने स्वसम्पादित अथर्ववेदीय सायणभाष्य के Critical Notice 'आलोचनात्मक विज्ञापन' में पञ्चपटलिका, पटल प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पञ्चम के अनेक वाक्य उद्धृत किये हैं। उनको देखकर ह्विटने रचित अनुवाद के सम्पादक श्री लैन्मैन ने लिखा था—

Manuscripts of Pancapatalika—Doubtless S. P. Pandit had a complete ms. of the treatise in his hands;... ....It is not *unlikely* that the ms. which S. P. Pandit used was one of those referred to by Aufrecht, Catalogus catalogorum, p. 315, namely Nos. 178–79 (on p. 61) of Kielhorn's Report on the search of Sanskrit mss. In the Bombay Presidency during the year 1880-81. (General Introduction (p. LXXII.) १७९ तो हमारा 'अ' है। शंकरपाण्डुरङ्गजी के पाठ इससे नहीं मिलते। अतः संभव है कि उन्होंने १७८ देखा हो जो हमारे पास नहीं है। इससे अधिक सम्भव यह है कि उन्होंने किसी अथर्ववेदीय श्रोत्रिय से अपने लिये यह पुस्तक प्राप्त किया हो, जो न जाने अब कहाँ होगा? इस अनुमान का यह कारण है कि पूर्वोक्त सूची-पत्र के १७८ और १७९ अङ्क वाले ग्रन्थ निकटस्थ स्थानों से प्राप्त होने के कारण, बहुत अंशों में एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं।

पञ्चपटलिका कब लिखी गई?

अथर्ववेद भाष्य ३।१०।७ के अन्त में सायण (वि. सं. १४०७-४४) का यह वचन है—

"पूर्णा दर्वीति पृथग्ग्रहणात् "ग्रहणम् आ ग्रहणात्" (कौ० ८।२१) इति न्यायात् विनियोगविषये "आ मा पुष्टे च" इत्येकावसाना ऋक्। पञ्चपटलिकायां (३।११) तु त्र्यवसाना एकैव ऋग् इत्युक्तम्।"

यहाँ पञ्चपटलिका का मत उद्धृत किया गया है। इसके अनुसार ३।१०।७ तीन अवसानों वाली एक ही ऋचा है, परन्तु कौशिक सूत्रानुसार ये दो ऋचाएं हैं, पहली एक अवसान वाली और दूसरी दो अवसानों वाली।

कौ० ८।२१, पर टीका करते हुए दारिल लिखता है—

"पुनरुक्तप्रयोगः। पञ्चपटलिकायामेव कथितः। आर्षीसंहितायाः कर्मसंयोगात्। आचार्यं संहिताभ्यासार्थाः।"

यहाँ पर दारिल ने पञ्चपटलिका के उक्तानुक्त न्याय की ओर संकेत किया है।

अथर्ववेदीय परिशिष्ट सायण और दारिल से बहुत पूर्वकाल के हैं। उनमें ४९वां परिशिष्ट चरणव्यूह है। उस का वचन है—

"लक्षणग्रन्था भवन्ति। चतुरध्यायी, प्रातिशाख्यम्, पञ्चपटलिका, दन्त्योष्ठविधिः. बृहत्सर्वानुक्रमणी चेति।"

अथर्ववेदीय सर्वानुक्रमणी पूर्वोक्त तीनों साक्षियों से निस्सन्देह बहुत पूर्वकालीन है। यह बात चरणव्यूह के पूर्वोद्धृत वाक्य से परिपुष्ट हो जाती है। उसमें स्थल स्थल पर पञ्चपटलिका के अनेक वचन "इति" पद लगाकर वा विना इसके लिखे गये हैं। अतः पञ्चपटलिका का काल पर्याप्त पुरातन है। कितना पुरातन, यह कहना अभी बहुत कठिन है।

उपर्युक्त काल-क्रम-शृंखला में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। पञ्चपटलिका के प्रथम श्लोक में ही परिबभ्रव का नाम

आया है । यह पञ्चपटलिका उसी के मतानुसार कही गई है । इस परिबभ्रव आचार्य का पता अथर्ववेदीय साहित्य में हमें नहीं मिला । एक उपरिबभ्रव का पता कई स्थानों में लगता है । "पूर्वंयाकुर्वीतेति गार्ग्य, पार्थश्रवस, भार्गल, काङ्कायन, उपरिबभ्रव, कौशिक, जाटिकायन, कौरुपथय:" (कौ० ९।१०) । यहाँ आठ आचार्यों का नामोल्लेख है । उपरिबभ्रव उनमें पांचवां है । यदि हमारा परिबभ्रव इसका कोई सम्बन्धी है तो उसका मत जो पञ्चपटलिका में सम्प्रति मिलता है, अवश्य बहुत पुराना है ।

संहिता-भेद

पञ्चपटलिका ५।१७ में "आचार्यसंहिता" शब्द आया है । यह आचार्यसंहिता क्या थी, इसका निर्णय पूर्वोद्धृत दारिल के वाक्य में मिलता है । यथा—'आर्षी संहितायाः कर्मसंयोगात् । आचार्यसंहिताभ्यासार्थः" (कौ० ८।२१, २२) । इससे ज्ञात होता है कि जिस संहिता में उक्तानुक्तविधि चरितार्थ हो वह आचार्य-संहिता और जो विनियोगार्थ हो वह आर्षी संहिता कहाती है । विनियोग में मन्त्रों की कोई मात्रा भी नहीं छोड़ी जाती अतः उस में उक्तानुक्त न्याय वर्त्ता नहीं जाता ।

संहिता-परिमाण

हस्तलिखित जितनी शौनकीय संहिताएं सम्प्रति मिलती हैं, वे सब बीस काण्डयुक्त हैं । सायणभाष्य भी बीसवें काण्ड के कुछ भाग पर मिल जाता है, यद्यपि उसमें कुन्तापसूक्त (१२७-१३६) नहीं हैं । इन्हीं कुन्ताप सूक्तों के विषय में प्राय: विद्वानों का मत है कि इनका पद पाठ नहीं हुआ, क्योंकि आज तक अप्राप्त है । दयानन्द सरस्वती भी (सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अल्लोऽपनिषद् के आगे) अथर्वसंहिता को बीस काण्डयुक्त ही मानते

हैं। ब्लूमफील्ड, व्हिटने आदि पाश्चात्य लेखकों का मत है कि १८ काण्ड ही मूल संहितान्तर्गत हैं। हरिप्रसाद ने वेदसर्वस्व के अथर्व-संहिता प्रकरण में मूलसंहिता को दश काण्ड पर्य्यन्त ही माना है। ये विचार क्या-क्या आधार रखते हैं, और इनमें से कौनसा सत्य अथवा माननीय है, इसका विचार अथर्व बृहत्सर्वानुक्रमणी के सम्पादन हो जाने के पश्चात् किया जा सकता है। इस लक्षण ग्रन्थ में बीसवें काण्ड के भी ऋषि, देवता, छन्दादि दिये हैं, यद्यपि उनका आधार आश्वलायन की अनुक्रमणी है। उसका वचन यह है—

"ओं अथाथर्वणे विंशतितमकाण्डस्य सूक्तसंख्या संप्रदाया-दृषिदैवतछन्दांस्याश्वलायनानुक्रमानुसारेणानुक्रमिष्यामः । खिला [नि] वर्जयित्वा ।" एकादश पटल का प्रारम्भ ।

यहाँ इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य लेखकों ने पञ्च-पटलिका का आश्रय लिया है और इसमें अठारह ही काण्डों का वर्णन है। देखो २।५ तथा ३।१२ इत्यादि।

पञ्चपटलिका में हमें एक ही बात खटकती है। वह है ३।१२ और ४।१७ में। ३।१२ के अन्त पर तो हमारी टिप्पणी भी है, यही बात ४।१७ के अन्त में आई है। दोनों स्थलों में काण्ड १७ का पहले वर्णन है और १८ का पीछे। उत्तर स्थल में "यम" काण्ड १८ के अनुवाकों में मन्त्र-संख्या कहकर "विषासहिः" प्रतीक धर के १७वें काण्ड का उल्लेख है। अन्य सब स्थलों में क्रमशः काण्ड वा सूक्तों का उल्लेख और यहीं पर भेद विशेष सन्देहोत्पादक है। सम्भव है अथर्ववेदीय किसी अन्य शाखा में ऐसा ही काण्डक्रम हो और तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ यह पञ्चपटलिका आदि हों।

संहिता-विभाग

अथर्ववेदसंहिता काण्ड, प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मंत्र, पर्य्याय, गण और अवसानों में विभक्त है। काण्ड रचना के सम्बन्ध में ब्लूमफील्ड और ह्विटने ने कल्पना की थी कि अठारह काण्ड तीन बड़े भागों में बांटे जा सकते हैं। अर्थात्—

बृहद्	भाग	प्रथम	काण्ड १—७
,,	,,	द्वितीय	,, ८—१२
,,	,,	तृतीय	,, १३—१८

इन तीनों में अनुवाक, सूक्त और ऋचा आदि की रचना भिन्न-भिन्न क्रम से पाई जाती है। पञ्चपटलिका में भी "तिसृणा-माकृतीनाम्" शब्द के प्रयोग से तीन प्रकार का विभाग किया है, परन्तु वह विभाग इससे कुछ थोड़ा सा भिन्न है। पटलिका में दूसरा भाग ८-११ काण्डों का और तीसरा १२-१८ काण्डों का है। ऋचागणना के लिये पटलिका का क्रम अधिक उपयोगी है। यह बात पिछले गणना-कोष्ठों के देखने से सुस्पष्ट प्रतीत होती है। यदि बर्लिन संस्करणानुसार प्रत्येक पर्याय-समूह को एक एक सूक्त मानें तो ८-११ काण्डों में दश २ सूक्त ही पाये जाते हैं। अतः बारहवाँ काण्ड अगले विभाग में मिलाया गया है।

अठारह काण्डों में कुल मन्त्र ४६२७ हैं। यह गणना ह्विटने से भिन्न है। उसके अनुसार मन्त्र-संख्या ४४३२ है। भिन्नता का कारण पर्याय-सूक्त हैं। यह सारा भेद ह्विटने के नोटों के देखने से विदित हो जाता है। हमने गणना पटलिकानुसार दी है। इसी के अनुकूल मुम्बई संस्करण छपा है।

अथर्ववेद के प्रथम अठारह काण्डों में ३५ पैंतीस स्थलों पर ४५ पैंतालीस ऋचाएं वही हैं जो इसी संहिता के पूर्व स्थलों में भी

आ चुकी हैं। उन्नीसवें काण्ड में छः स्थलों पर सात ऐसी ही ऋचाएं हैं। इन्हीं ऋचाओं के सम्बन्ध में पटलिका १।४ में कुछ नियम लिखे गये हैं। यदि कोई अकेली ऋचा दोबारा आवे तो लिखित ग्रन्थों में "इत्येका", यदि दो आवें तो "इतिद्वे" इत्यादि लिखा होता है। इन्हीं सब ऋचाओं का क्रमशः वर्णन व्हिटने ने 'इण्डैक्स वर्बोरम' में किया था। उसी की संशोधित नकल व्हिटने के अनुवाद के पृ० cxix पर मिलती है। पाठकों के लाभार्थ हम उसे वहीं से उद्धृत कर देते हैं।

(१)	४.	१७। ३	....	१.	२८। ३
(२)	५.	६। १	....	४.	१। १
(३)		२			७। ७
(४)		२३।१०–२	....	२.	३२। ३–५
(५)	६.	५८। ३	....	६.	३९। ३
(६)		८४। ४	....		६३। ३
(७)		९४। १, २	....	३.	८। ५, ६
(८)		९५। १, २	....	५.	४। ३, ४
(९)		१०१। ३	....	४.	४। ७
(१०)	७.	२३। १	....		१७। ५
(११)		७५। १	....		२१। ७
(१२)		११२। २	....	६.	९६। २
(१३)	८.	३।१८	....	५.	२९।११
(१४)		२२	....	७.	७१। १
(१५)		९।११	....	३.	१०। ४
(१६)	९.	१।१५	....	८.	८९। २
(१७)		३।२३	....	३.	१२। ९
(१८)		१०। ४	...	७.	७३। ७

(१९)		२०	....		११
(२०)		२२	....	६.	२२। १
(२१)	१०.	१। ४	....	४.	१८। ५
(२२)		३। ५	....	६.	८५। १
(२३)		५।४६–७	....	७.	८९। १, २
(२४)		४८–९	....	८.	३।१२–३
(२५)	११.	१०।१७	....	५.	८। ६
(२६)	१३.	१।४१	....	९.	९।१७
(२७)		२।३८	....	१०.	८।१८
(२८)	१४.	१।२३–४	....	७.	८१। १–२
(२९)		२।४५	....		११२। १
(३०)	१८.	१।२७–८	....		८२।४,५
(३१)		३।५७	....	१२.	२।३१
(३२)		४।२५	.	१८.	३।६८
(३३)		४३	....		६९
(३४)		४५–७	....		१।४१–३
(३५)		६९	....	७.	८३। ३

---

(१)	१९.	१३। ६	....	६.	९७। ३
(२)		२३।३०	....	१९.	२२।२१
(३)		२४। ४	....	२.	१३। २
(४)		२७।१४-५	....	१९.	१६। १,२
(५)		३७। ४	....	५.	२८।१३
(६)		५८। ५	....	२.	३५।५

ऋग्वेद वा अथर्ववेद में ऋचा-गणना प्रकार

ऋग्वेदीय कात्यायन सर्वानुक्रमणी के परिभाषा प्रकरण में एक सूत्र है। 'द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्ति' १२।८ अर्थात् अध्ययन समय में वेदपाठी लोग दो दो द्विपदा ऋचाओं को एक एक बना कर पढ़ते हैं। इस नियमानुसार ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना के समय इन द्विपदा ऋचाओं को द्विगुण करके गणना की जाती है। ऐसी द्विपदा ऋचाएं अथर्व संहिता में भी देख पड़ती हैं। उन्हें हम व्हिटने के अनुवाद से लेकर नीचे देते हैं।

कां०	सू०	ऋचा	
२	१८	१-५	एकावसान।
५	१६	१-११	,,
९	७,५०१	१-६*, ८-१७, २०- १, २४- ६,	,,
१९	१८	१-१०	दो अवसान।

यहाँ पर पहले तीनों स्थलों की द्विपदा ऋचाओं की गणना पटलिका में की गई हैं। यहाँ इन ऋचाओं को द्विगुण नहीं किया गया।

उन्नीसवां काण्ड पटलिका में आया नहीं, अतः उसकी ऋचा-गणना सर्वानुक्रमणी से मिला ली गई है। अन्तिम उदाहरण दो अवसानों का है और पहले तीनों में एकावसान ऋचाएं हैं। कात्यायन अपनी सर्वानुक्रमणी में प्रायः दो अवसान वाली

---

* व्हिटने सातवीं ऋचा को एकपदा माना है बीकानेर वाली सर्वानुक्रमणी में ऐसा लेख हमें नहीं मिला। तदनुसार यह भी द्विपदा है।

ऋचाओं को ही द्विगुण करता है, एकावसान को नहीं। बृहत्सर्वानुक्रमणी वाले ने तो दो अवसान वालों ऋचाओं को भी द्विगुण नहीं किया। अतएव जो गणनाएं हमने ऊपर दी हैं वे इन विषयों पर अधिक प्रकाश पड़ने के अनन्तर कदाचित् फिर बदलनी पड़ें।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में ऋचाओं के अवसानों की तुलना

अथर्ववेदीय कोई एकावसाना ऋचा नहीं मिलती। त्र्यवसान ऋचाओं में से पांच के कुछ कुछ भाग ऋग्वेद में मिलते हैं। इससे यह न विचारना चाहिये कि वे ऋग्वेद से लिये गये थे और काल-क्रम के कारण इस अवस्था को पहुंच गये हैं। आर्य इतिहासानुसार अथर्ववेद भी उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद अतएव अनेक सदृशवाक्य वा वाक्य-समूह दोनों ग्रन्थों में प्रसंगतः कर्ता परमात्मा के एक होने से एक से आ सकते हैं। इसी प्रकार का अगली मन्त्र-तुलना में एक छठा मन्त्र है। वह हमारे कथन को परिपुष्ट करता है। यह छः मन्त्र वा मन्त्रभाग ऋग्वेदीय सदृश मन्त्र वा मन्त्रभागों के साथ विशेष विचारार्थ नीचे दिए जाते हैं।

अथर्ववेदीय त्र्यवसान ऋचाएं।	ऋग्वेदीय द्व्यवसान ऋचाएं।
(१) इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्।	इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
प्रथमावसान ३।१५।४	प्रथमावसान १।३१।१६
(२) यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व धिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।	.... , ... ,
प्रथमावसान ७।२६।३	द्वितीयावसान १।१५४।२

(३) स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । प्रथमावसान ८।५।२२	स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । प्रथमावसान १०।१५२।२
(४) उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह। सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । प्रथम द्वितीयावसान १७।१।२४	.... सहसा सह । द्विषंतं मह्यं रंधयन्मो अहं द्विषेत रधम् ।। आद्यन्त मन्त्र १।५०।१३
(५) शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति । मण्डूक्य १ प्सु शंभुव इमं स्व १ ग्नि शमय ।। द्वितीय तृतीयावसान १८।३।६०	.... मण्डूक्या ३ सु संगम इमं स्व १-ग्नि हर्षय ।। आद्यन्त मन्त्र १०।१६।१४
(६) आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ।। आद्यन्त मन्त्र १८।४।८८	आ ते अग्ने इधीमहि................ ... .यद्धस्याते पनीयसी समिद्धीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर । आद्यन्तमंत्र ५।६।४

उपर्युक्त छठा मन्त्र कुछ पाठ-भेद के साथ ही ऋग्वेद में भी मिल जाता है। अथर्ववेद में त्र्यवसान और ऋग्वेद में दो ही अवसानों वाला है। इस मन्त्र पर व्हिटने ने स्वानुवाद में एक नोट दिया है। 'यह मन्त्र ऋग्वेद ५।६।४, सामवेद १।४१९ और

२।३७२, तै० स० ४।४।४।६ और मै० सं० २।१३।७ में मिलता है। इन सब ग्रन्थों का पाठ ऋग्वेद के समान है। शङ्करपाण्डुरङ्ग तीसरे पाद में 'यद् घ' पढ़ता है। हमारे हस्तलिखित ग्रन्थों में 'यद् ध' (पद पा० यत्। ह) मिलता है।' पाश्चात्य लेखकों के अनुसार यदि यह मन्त्र मूलतः ऋग्वेद का था और वैसा ही सामवेद वा अन्य शाखाओं में मिलता है तो अथर्ववेद में इसका अकारण बदला जाना अवश्य अमान्य होगा। वे वैदिक आर्य्य जिनकी स्मृति शक्ति के सामने सारा संसार नतशिर है, इतनी शीघ्रता से अपनी मान्य पुस्तक वेद के विषय में भूलने वाले न थे। और जो यह कारण कहो कि उन्होंने ऋग्वेद से पिछली संहिताओं में भाषा-परिवर्तन वा अन्य भेदों द्वारा पहले, मन्त्रों को सरल करना चाहा तो भी युक्त नहीं। हम पूर्व कह आये हैं कि मूल अथर्ववेद ऋग्वेद जितना ही पुराना है, अतएव उसमें तो ऋग्वेद के पाठ न आ सकते थे। शौनकीय अथर्ववेद वही मूलवेद है वा नहीं, यह हम अभी नहीं कहते, परन्तु यह निश्चय ही सन्देह-सीमा से ऊपर है कि अथर्ववेद में ऋग्वेद से मन्त्र न लिये गये थे। ऐसी अवस्था में पूर्व दिये हुए मन्त्र कुछ और ही परिणाम देंगे, अर्थात् कर्त्ता परमात्मा ने मूल चार संहिताएं चार ऋषियों के हृदय में स्वतन्त्ररूपेण प्रकाशित कीं। हमारे इस लेख पर अनेक लोग आक्षेप करेंगे। उनसे हम यही निवेदन कर देते हैं कि यहाँ यह बात केवल प्रसंगतः कही गई है।

हमारे पास उक्तानुक्त-नियम-क्रम को साक्षात् देखने के लिये कोई लिखित संहिता न थी, अतएव प्रथम पटल के अनुवाद में बहुत सन्देह रहा है। अनुवाद हमने इसलिये दे दिया है कि आगे इससे सहायता ली जा सकेगी। पटलिका के अनेक पाठ सन्दिग्ध ही रहे हैं। उनके विषय में हम कुछ कर नहीं सकते थे। हस्तलिखित सामग्री अत्यल्प थी। मूल ग्रन्थ वा अनुवादादि में जो प्रतीकादि का पता दिया गया है वह बर्लिन संस्करणानुसार है।□

ओं

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

प्रथमः पटलः

उक्तानुक्तस्य यं न्यायं प्रोवाच परिबभ्रवः ।
पर्यायाणामृचां वापि तद्वक्ष्यामो यथाक्रमम् ।
बहूना मव्यवेताना मनेकं सदृशं पदम् ।
आदिष्टं[1] तेषु वा यत्स्यात्तदुक्तानुक्तमुच्यते[2] ।
तदुत्पत्तौ तु संशब्दमंत्ये प्रकरणस्य च ।
अन्यत्रैकं पदं वाच्यं तस्यारंभविरामयोः ।
अंत्यमारंभणं[3] विद्यादाद्यं विरमणं भवेत् ।
ते हरः[4], सांतरिक्षे[5], च विद्यादत्र निदर्शनम् ।
यतस्तूर्ध्वं निवृत्तिः[6] स्यादाद्यस्यांत्यस्य वा पुनः ।
तेनैव तत्र वक्तव्ये तयोश्चानंतरे पदे ।
ते चक्रुः[7], सूक्तसप्तम्यां दिशो घार्युनिदर्शनम्[8] ।।१।।

आकारो यत्र वाद्यं स्यात्तत्रापि[9] द्वे पदे वदेत् ।
सा पितॄन्प्रभृतिष्वेहीत्येतदत्र[10] निदर्शनम् ।
अवसानैकदेशश्च यो गच्छेदवसानताम् ।
प्रक्रमस्य समाप्त्यर्थं तत्रापि द्वे पदे वदेत् ।

---

१. अ, आदिष्ठं । २. अ, ब, स्यातदुक्त ।
३. अ, ब, अत्य । ४. २।१९।२ ।
५. ८।१०।२, १ । ६. अ, ब, निवृत्ति ।
७. ५।३१।१ । ८. ५।१०।१ ।
९. ब, स्यातत्र । १०. ८।१०।४, २ ।

योजं,[१] स्कंभंतमित्येते[२] विद्यादत्र निदर्शनम् ।
अवसानं तु यद्भूत्वा भवेदवयवः पुनः ।
यांत्या वदवसानानां[३] तासामप्येवमुत्सृजेत् ।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशनीत्येतदत्र[४] निदर्शनम् ।
अवसानं तु यत्तुल्यं सर्वमेवतदुत्सृजेत् ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चत,[५] वैकुर्वंतं[६] निदर्शनम् ।
यास्वेषविधिरुक्तासु तासु सर्वासु वेद्यदि ।
सदृग्वंत्यवसानानां तासामप्येवमुत्सृजेत् ।
यथाद्यौश्च,[७] शेरभक[८], यो वै नैदाघं नाम[९] ।
यथा वातो वनस्पतीनित्येतदत्र[१०] निदर्शनम् ।।२।।

नानावसानयोर्भूत्वा यदेकस्मिन्पुनर्भवेत् ।
तेनैव तत्समाप्तव्य मेकस्मिन्चापि कीर्त्तयेत् ।
समिमामु[११]त्तरस्यां[१२] च विद्यादत्र निदर्शनम् ।
पर्यायेष्ववसानानामृग्भिस्तुल्योविधिर्भवेत् ।
सर्वदा[१३], क्षिप्रमित्येते[१४] वैपरेतं[१५] निदर्शनम् ।
गणास्तु ये वसानानां संबंधार्थाः पृथक्पृथक् ।
तेष्वर्था विधिवद्बोध्याः[१६] सोदक्रामं[१७] निदर्शनम् ।

---

१. ९।५।२२ । २. १०।७।४ ।
३. ब वसानां । ४. २।८।२ ।
५. अ, ब, तमिद्रः प्रत्यमुचत । ६. ९।५।३२ ।
७. २।१५।१ । ८. २।२४।१ ।
९. अ, ब, न्नाम, ९।५।१,३१ । १०. १०।५।१३ ।
११. १८।२।४४ । १२. ४।१४।८ ।
१३. १०।९।१२ । १४. १२।६।१ ।
१५. श, विद्यादत्र । १६. श, वि (दि?) विधिः ।
१७. ८।१०।२ ।

अव्यवेषु च यद्दृष्टं[1] व्यवेतेष्वपि दृश्यते ।
तत्तुल्यं व्यवधीयेत तस्मिंस्तत्कीर्त्तयेत्सकृत् ।
यदेनमाह व्रात्येति[2] चतुर्थस्तं निदर्शनम् ।
अत ऊर्ध्वं यथोक्तेन न्यायेन पुनरुत्सृजेत् ।
अन्ते च कीर्त्तयेत्तेन ते वश इति निदर्शनम् ।।३।।

ऋचस्तुल्याः पुनश्चेत्स्युर्यावत्तासां[3] विशेषणम् ।
तावदुक्त्वा यथाशास्त्रमिति नासंदधीति च ।
ततः संख्यां प्रयुंजीत या शशापेति[4] निदर्शनम् ।
द्वयोः सं वो मनांसीति[5] तिसृणामत्रिवत्स्मृतम् ।
एकेति यत्र संदेहः पूर्वेत्येनां विशेषयेत् ।
यास्ते धाना[6] इति पूर्वेत्येतदत्र निदर्शनम् ।
यत्र द्वे इति संदेह आदौ तत्र च कीर्त्तयेत् ।
पूर्वापरं[7], नवो[8] नव इत्येतदत्र निदर्शनम् ।
एका मिति नाप्रदेशे द्वे तिस्र इति कीर्त्तयेत् ।
वर्ग चर्च्चा पदांत्याहुर्यावत्तासां विशेषणम् ।।४।।

इति प्रथमः पटलः समाप्तः ।

---

१. अ, ब, यदृष्टं ।
२. १५।१।४ ।
३. अ, ब, पुनः श्चेत् । ४. १।२८।३ । ४।१७।३ ।
५. ३।८।५ । ६।९४।१ । ६. १८।३।६९ । १८।४।२६ ।
७. ७।८१।१ । [१३।२।११] १४।१।२३ ।
८. १४।१।२४ ।

द्वितीयः पटलः

भावमथातः छंदसि । तिसृणामाकृतीनां सूक्त वर्णक मृक्य[1] पर्यायिक यजुषामवसानं च[2] विज्ञानाय व्याख्यास्यामः । चतुर्षु कांडेष्वादितः पंचसूक्ता अनुवाकाः षड्वर्जम्[3] । महत्स्वेक वर्जम् । दश सूक्तास्तृचेषु पंचवर्जम् । ऋक्सूक्ता एकर्चेषु । द्विसूक्ताः क्षुद्रेषु । अनुवाकसूक्ता एकानृचेषु । कांडसूक्ताः शेषे पर्यायिकवर्जम् । व्रात्यप्राजापत्योरेव पृथग्विभाषित मुत्तरंयत् । सूक्तावस्था यथा कांडम् । तत्र न प्रत्युपायो न दुर्याण्यः ? आपवादिका न्यधिकानि । महत्सु कांड समवायोऽष्टर्चं प्रभृतीनामा कृतीना मष्टादशेभ्यः षोडशवर्जम् ।।५।।

ये[4] त्रिषप्ता (१।१)[5] ये ३ स्यांस्थ (३।६) यद्येक वृषोसि (५।४) इति षट्सूक्ताः। अनु सूर्यमुदयताम् (१।५) अभीवर्त्तेन (१।६) दूष्या दूषिरसि (२।३) इति सप्तसूक्ताः। भ्रातृव्यक्षयणम् (२।४) इति नवसूक्ताः। इमा यास्तिस्रः पृथिवीः (६।३) वैश्वानरः[6] (६।७) संदानं वो (६।११) यद्देवा देव हेडनम् (६।१२) त्येकादशसूक्ताः । वनस्पते वीड्वंगः (६।१३) इत्यष्टादशसूक्ताः। एकर्चेषु प्रथमचतुर्थौ त्रयोदशसूक्तौ । द्वितीयाष्टमौ नव । तृतीयांत्यौ षोडश । पंचसप्तमावष्टौ[7] । षष्ठश्चतुर्दश । नवमो द्वादश ।।६।।

विद्मा शरस्य पितरम् (कां. १ सू. ३) द्वितीयं नवकम् । स्तुवानमग्ने (७) सप्त । वषट् ते पूषन् (१।११) अभीवर्त्तेन (२९) इति षट्क । इयं वीरुत् (३४) इति पंच ।

---

१. व, रिक्य ।

२. व में नहीं है । अ में भी पीछे हाशिये पर लिखा गया है ।

३. अ, व, षड्वर्जं ।   ४. अ, व, य ।

५. इन कोष्ठों में काण्ड और अनुवाक दिये हैं ।

६. अ, व, विश्वानरः ।   ७. श, पञ्चम ।

अदो यदवधावति (२।३), दीर्घायुत्वाय (४) इति षट्क। इन्द्र जुषस्व (५) इति सप्त। क्षेत्रियात्[1] त्वा (१०) द्यावापृथिवी उरु (१२) इत्यष्टके। निः सालां धृष्णुम् (१४), यथा द्यौश्च (१५) इति षट्क। ओजोस्योजो मे (१७) सप्त। शेरभक (२४) अष्टौ। ने छत्रुः (२७), पार्थिवस्य (२९) इति सप्तक। उद्यन्नादित्यः (३२) षट्। अक्षीभ्यां ते (३३) सप्त। आ नो अग्ने (३६) अष्टौ।

आ त्वा गन् (३।४) सप्त। आयमगन् (५), पुमान्पुंसः[2] (६) अष्टके। हरिणस्य (७) इति सप्त। प्रथमा ह (१०) त्रयोदश। मुंचामि त्वा (११) अष्टौ। इहैव[3] ध्रुवाम् (१२) नव। यददः संप्रयतीः (१३) सप्त। इन्द्रमहम् (१५) अष्टौ। प्रातरग्निं[4] (१६) सप्त। सीरा युंजंति (१७) इति नव। संशितं मे (१९) अष्टौ। अयं ते योनिः (२०), ये अग्नयो (२१) दशके। पयस्वतीः[5] (२४) सप्त। यद्राजानो (२९) अष्टौ। सहृदयम् (३०) सप्त। विदेवा (३१) एकादश।

य आत्मदा (४।२), यांत्वा गन्धर्वो अखनद् (४), ब्राह्मणो जज्ञे (६) इत्यष्टकानि।एहि जीवम् (९) दश। अनड्वान दाधार (११) द्वादश। अजो ह्यग्नेः (१४) नव। समुत्पतन्तु (१५) षोडश। बृहन्नेषाम्[6] (१६) नव। ईशानां त्वा (१७), समं ज्योतिः (१८), उतो अस्य[7] बन्धुकृद् (१९) इत्यष्ट कानि। आ पश्यति (२०) नव।

---

१. अ, व, क्षेत्रिया।

२. अ, ब, पुसः।

३. अ, ब, इहिव। यह अशुद्धि साधारणतया हो सकती है। 'अ' प्रकार के पुराने ग्रन्थों में हि—है बनता है।
अतः लेखक प्रमाद से यही हि हो गया है।

४. अ, ब, तरग्नि।

५. अ, ब, पयंः।

६. अ, व, बृहन्येषां।

७. ञ्स्य।

अहं रुद्रेभिः (३०), अप नः शोशुचदघम् (३३) ब्रह्मास्य शीर्षं बृहद् (३४) इत्यष्टकानि । तांत्सत्यौजाः (३६) दश। त्वया पूर्वम् (३७) द्वादश । पृथिव्यामग्नये (३९) दश । ये पुरस्ताज्जुह्वति (४०) इत्यष्टौ ।

ऋधङ्मत्रं: (५।१), तदिदास (२) इति नवके । ममाग्ने वर्चः (३) एकादश । यो गिरिषु (४) दश । रात्रि माता (५) नव । ब्रह्म[1] जज्ञानम् (६) चतुर्दश । आ नो भर (७) दश । वैकङ्कतेन[2] (८) इति नव । दिवे स्वाहा (९), अश्म वर्म्मं मेसि (१०) इत्यष्टके ।

विच्छेद दोषस्तु पूर्वस्मिन्पार्षदे ये व्यवसीत्यंते च[3] देवहेडनो ब्रह्मगव्यांमगरसामेव मेतच्चतुर्ऋचान्यऽष्टर्चीं न व्यमिमीतांन्यत[4] आगमोहि ॥७॥

कथं महे (५।११), समिद्धो अद्य (१२), ददिर्हि मह्यम् (१३) इत्येकादशकानि । सुपर्णस्त्वान्वविदत् (१४) त्रयोदश । एका च मे (१५), यद्येक वृषोसि (१६) इत्येकादशके । ते वदन् (१७) अष्टादश । नैतां ते (१८), अतिमात्रम् (१९) इति पंचदशके । उच्चैर्घोषः (२०), विहृदयम् (२१) इति द्वादशके । अग्निस्तक्मनम् (२२) चतुर्दश । ओ ते मे द्यावापृथिवी (२३) त्रयोदश । सविता प्रसवानाम् (२४) इति सप्तदश । पर्वताद्दिवो योनेः (२५) इति त्रयोदश । यजूंषि यज्ञे (२६), ऊर्ध्वा अस्य (२७) इति द्वादशके । नव प्राणान् (२८) चतुर्दश । पुरस्ताद्युक्तो वह (२९) पंचदश । आवतस्ते (३०) सप्तदश । यां ते चक्रुः (३१) द्वादश ॥८॥

---

१. अ, ब्रंह्म

२. अ, व, वैकतेंन ।

३. ब, व ।

४. व, व्यमीमीतां ।

आबयो (६।१६), यथेयं पृथिवी मही (१७), सिंहे व्याघ्रे (३८), यत्ते देवी निर्ऋतिः (६३), य एनं परिषीदंति (७६), अपचितः प्रपतत (८३), यस्यास्त आसनि घोरे जुहोमि (८४), विश्वजित्[1] त्रायमाणायै मा परि देहि (१०७), इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि (१११), विषाणा पाशान्विष्याध्यस्मद् (१२१), शकधूमं नक्षत्राणि (१२८), रथजितां राथजितेयीनाम् (१३०) इति तृचेषु चतुर्ऋचानि द्वादश।

प्राग्नये वाचमीरय (३४), त्वं नो मेध (१०८), एतं भागम् (१२२), एतं सधस्थाः (१२३), यं देवाः स्मरमसिचन् (१३२), य इमां देवो मेखला माबबंध (१३३), त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा (१३८), न्यस्तिकारुरोहिथ (१३९) इति तृचेषु पंचर्चान्यष्टौ ॥९॥

धीती वा ये (कां० ७ सू० १), यथा सूर्यः (सू० १३), प्र नभस्व (१८), अयं सहस्रम् (२२), ययोरोजसा (२५), अग्नाविष्णू महि (२९), यस्य व्रतम् (४०), अति धन्वानि (४१) इति द्वे (४२)। जनाद्विश्वजनीनात् (४५), कुहूं देवीम् (४७) इति त्रीणि (४८ तथा ४९)। संज्ञानं नः (५२), ऋचं साम (५४), यदाशसा (५७) इति द्वे (५८)। यदग्ने तपसा (६१), इदं यत् कृष्णः (६४), प्रजावतीः (७५), वि ते मुञ्चामि (७८), यो नस्तायत् (१०८), शुम्भनी (११२) त्रीणि[2](११३ तथा (११४)। नमो रूराय (११६) इति द्वृचानि एकर्चेषु।

प्रान्यात् (३५), सिनीवालि (४६), प्रतीचीनफलः (६५), सरस्वति व्रतेषु (६८), उत्तिष्ठताव (७२), सांतपनाः (७७),

---

१. अ, विश्वजि। ब, विश्वनि। अ में भी 'न' को ही पीछे से 'ज' बनाया गया है।

२. इति त्रीणि ॥

अनाधृष्यः (८४) अपि वृश्च (९०), उदस्य श्यावौ (९५), अग्न इन्द्रश्च (११०) इति तृचानि।

अदितिर्द्यौः (६), प्रपथे पथाम् (९), सभा च मा (१२), अभित्यम् देवम् (१४), धाता दधातु नः (१७), यत्ते देवा अकृण्वन् (७९), पूर्णा पश्चात् (८०), इत्यत्रैकर्चं प्राजापत्यम्। अप्सु ते राजन् (८३), अपो दिव्याः (८९), प्र पतेतः (११५) इति चतुर्ऋचानि।

यज्ञेन यज्ञम् (५), इदं खनामि (३८), यत्किंचासौ (७०) इति पंचर्चानि।

अन्वद्य नः (२०), पूर्वापरम् (८१), अभ्यर्चत (८२) इति षडर्चानि। अमुत्रभूयात् (५३), ऊर्जं बिभ्रत् (६०), इदमुग्राय (१०९) इति सप्तर्चानि।

विष्णोर्नु कम् (२६), तिरश्चिराजेः (५६), यदद्य त्वा (९७) इति अष्टर्चानि।

यथा वृक्षम् (५०) इति नवर्चं सूक्तम्।

समिद्धो अग्निर्वृषणा (७३) इत्येकादशर्चं घर्मसूक्तम्।

अपचिताम् (७४) इति तदर्थं सूक्तानि[1] चत्वारि। अपचिद्भेषजम्। इर्ष्यापनयनम्। व्रतोपायनम्। गोष्ठव्रतीयम्[2] च ॥१०॥

इति द्वितीयः पटलः समाप्तः[3]।

---

१. श, इतव्द [मिति द्वे अ ?] थंसूक्तानि ॥

२. श, व्रजीयम् ॥

३. अ, ब, इति द्वितीयो ध्यायः पटलः समाप्तः ॥

तृतीयः पटलः

आर्षीपार्षदे पूर्वे प्रोक्ता सूक्ताग्रंथसंख्यया ।
नियतं वै[1] ऋचामग्र मृषिभिश्च महापथः ।
सूक्तानां परिमाणार्थं मृचामग्रं प्रमाणितम् ।
ऋचाग्रेण तु सुक्ताग्रं सूक्ताग्रेण तु संहिताम् ।
तस्मात्सूक्ताग्रपरिमाणेन[2] तपसाधीत्य संहिताम् ।
आर्षयी मृषिभिरभ्यस्तां सूक्तैः संप्रदायामधीमहे ।।११।।

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः (१।२६।२), सुषूदत मृडत (४)। प्राणापानौ (२।१६।१) शेरभकेत्यातः ।[3]

मुमुक्तमस्मान् (५।६।८),दिवे स्वाहा (९।१—६) इति षट् । यद्येकवृषोसि (१६) इत्येकादश । यजूंषि यज्ञे (२६।१—११) इत्युत्तमां वर्जयित्वा । देवो देवेषु (२७।२—७) इति षट् ।

पृथिव्यै श्रोत्राय (६।११) इति तिस्रः । वीहि स्वाम् (८३।४), स पचाभि (१२३।४), दृंह प्रत्नान् (१३६।२) ।

अयं सहस्रमा नो (७।२२।१), योऽन्येद्युः (११६।२) ।
ते त्वा रक्षन्तु (८।१।१४) ।

पृथिवी दंडः (९।१।२१), प्राच्या दिशः शालायाः (३।२५—३१) साहस्रः इत्यातः । तास्ते रक्षन्तु तव (५।३८) ।

सोमो राजा (१०।१।२२), इमे मयूखाः (७।४४) ।
चक्षुः श्रोत्रम् (११।५।२५) ।

---

१. अ, ब, नै ।

२. ब, तस्मास्तुक्ताग्रति ।

३. अर्थात् शेरभक (२४) सेपूर्व सूक्त २३ के अन्त तक ।।

ता नः प्रजाः (१२।१।१६), अग्निवासाः (२१), अग्ने अक्रव्यात् (२।४२), अन्तर्धिर्देवानाम् (४४), सर्वानग्ने (४६) ।

धर्तासि धरुणोसि (१८।३।१६), उदपूरसि (३७), अक्षितिम् (४।२७), शूंभंतां लोकाः पितृ षदनाः (६७) इति द्वे । अग्नये कव्यवाहनाय (७१) इति प्रभृति येत्र पितरः (८६) इत्यातः एकावसानाः ॥१२॥

शं ते अग्निः (२।१०।२) इति सप्त ।

आमा पुष्टे च पोषे च (३।१०।७), अभित्वा जरिमाहित (११।८), इमामग्ने शरणिम् (१५।४), उद्धर्षन्ताम् (१९।६), यत्ते वर्चः (२२।४), प्राची दिक् (२७) इति षट्क । क इदम् (२९।७) ।

इन्द्रो रूपेण (४।११।७), एष यज्ञानाम् (३४।५), नदी यं त्वप्सरसः (३७।३), या यैः परिनृत्यति (३८।३), सूर्यस्य रश्मीन् (५), अन्तरिक्षेण (७) इत्युत्तमाम् ।[१] पृथिवी धेनुः (३९।२), अन्तरिक्षं धेनुः (४), द्यौर्धेनुः (६), दिशो धेनवः (८) ।

अर्धमर्धेन (५।११९), इन्द्रायाहि (८।२), अत्रै नानिन्द्र वृत्रहन् (९), उदायुरुद् (९।८), बृहता मनः (१०।८), देवो देवाय (११।११), अयं लोकः (३०।१७) ।

अवैरहत्याय (६।२९।३), विद्म ते स्वप्न जनित्रम् (४६।२), यथा मांसम् (७०।१) इति तिस्रः (२ तथा ३), यो अङ्ग्यः (१२७।३), न्यस्तिका रुरोहिथ (१३९।१) ।

यस्योरुषु (७।२६।३), पदज्ञाः स्थ (७५।२), अपेह्यरिः (८८।१), यथा शेपः (९०।३) ।

---

१. बर्लिन संस्करण में यह ऋचा दो अवसानों वाली है । मुम्बई संस्करण में तीन अवसान हैं ।

मा त्वा क्रव्यात् (८।१।१२), शिवे ते स्ताम् (२।१४), कश्यपस्त्वाम् (५।१४), स्वस्तिदा[1] (२२), ये शालाः (६।१०), येषां पश्चात् (१५), उद्धर्षिणम् (१७), याः सुपर्णाः (७।२४) इतो जय (८।२४)।

यद्वीध्रे (९।१।२४), अन्तरा द्याम् (३।१५)।

आरे अभूत् (१०।४।२६), अग्नेर्भागस्थ (५।७) इत्यष्टौ (८—१४)। विष्णोः क्रमोसि (२५) इत्येकादश (२६—३५)[1]। तमिन्द्रः (६।७) इति चतस्रः (८—१०), तेनेमां मणिना कृषिम् (१२) इति षट् (१३—१७)। उत्तरं द्विषतः (३१), ये पुरुषे (७।१७)।

नमस्ते घोषिणीभ्यः (११।२।३१), ये बाहवः (९।१), अर्बुदिर्नाम (४), श्वन्वतीरप्सरसः (१५), खड्रेऽधिचंक्रमाम् (१६), ये च धीराः (२२), वनस्पतीन्वानस्पत्यान् (२४), ईशां वो मरुतो देवः (२५), ईशां वो वेदराज्यम् (१०।२), वायुरमित्राणाम् (१६)।

यार्णवेऽधि (१२।१।८), यामश्विनौ (१०) इति चतस्रः (११—१३)। महत्सधस्थम् (१८), भूम्यां देवेभ्यः (२२), यस्ते गन्धः पुरुषेषु (२५), यच्छयानः पर्यावर्त्ते (३४), यापसर्पं विजमाना विमृग्वरी (३७), यस्यां सदो हविर्धाने (३८), यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति (४१), यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति (५१), प्राच्यै त्वा दिशे (३।५५) इति षट् (५६–६०)।

---

१. बर्लिन संस्करण में चार अवसान हैं। मुम्बई संस्करण में तीन अवसान देकर नीचे टिप्पण दिया है कि A R put a vertical stop after जितः।

यस्माद्वाताः (१३।३।२), यो मारयति[1] (३),यः प्राणेन[1] (४), अहा रात्रैर्विमितम्[1] (८), सम्यञ्चं तन्तुम्[1] (२०), वि य और्णात्[2] (२२)।

इदं सु मे (१४।२।९), अङ्गादङ्गात् (६९)।

शं ते नीहारो भवतु (१८।३।६०), यज्ञ एति (४।१३), आ त्वा अग्न[3] इधीमहि (८८) इति।

विषासहिं सहमानम्[1] (१७।१।१) इत्यष्टौ (२-८)। त्वं न इन्द्रोतिभिः (१०) इति चतस्रः (११-१३)। त्वं रक्षसे (१६), त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः (१८) इति द्वे (१९)। उदगादयमादित्यः (२४) इति त्र्यवसानाः[4] ।।१३।।

यो वै नैदाघं नाम (९।५।३१), यो व आपोऽपां भागः (१०।५।१५) इति सप्त (१६-२१)। य इमे द्यावापृथिवी जजान (१३।३।१) इत्येका। यस्मिन्विराट् (६) इति तिस्रः (७ तथा ८) कृष्णं नियानम् (९) इत्येकादश (१०-१९)। निम्रुचस्तिस्रः (२१), त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिः (२३) इति तिसृस्चतुर वसानाः।

यो वै कुर्वंतं नाम (९।५।३२) इति पंच (३३-३६) पंचावसानाः ।।१४।।

इति तृतीयः पटलः।

---

१. र्बलिन संस्करण में दो अवसान हैं। मुम्बई संस्करण में तीन ही हैं। दोनों में प्रथमावसान का भेद है।

२. अ, ब, दोनों में बहुत भ्रष्टपाठ हैं।।

३. इस पर शंकरपाण्डुरङ्ग का टिप्पण में पाठभेद देखो।

४. अ, ब, दोनों पुस्तकों में पाठक्रम यही है। न जाने १८वां काण्ड पहले और १७वां पीछे क्यों आया।

चतुर्थः पटलः

आद्यप्रथम ऋचो नव स्युर्विद्यात् । पञ्च परे तु । पंचमेऽष्टौ । एकादश चोत्तरे पराः स्युः । विंशत्या कुरुते । विंशकावतोन्यौ ।

पंचर्चाद्यो विंशते स्युर्नवोर्ध्वम् । ततः परांत्ये[1] । अष्ट कुर्याद्द्वितीये । अष्टोनं[2] तस्माच्छताद्धं तृतीये । द्व्यूनं तुरीयः । त्रिंशदेकाधिकोंत्यः ।

त्रिंशन्निमिताः षडर्चेषु कार्यास्तिस्रो दशाष्टौ च दशपंचर्चा चतुर्दशांत्या अनुवाकशश्च संख्यां विद्यादधिकां निमित्तात् ।

सप्त । नव । एकविंशतिः । अथ कुर्याद्द्वादश । अपराः पंच । षट् । सप्त चापि बोध्याः । सप्तदशांत्याः षडर्चवच्च ।

आद्यात्पर एकादशहीनः षष्ठिः । द्विषड्भिराद्यः । तिसृभिस्तृतीयः । षष्ठे तु नवैका च । परा[3] च षष्ठेर्नव ।

अपर एक वृषः[4] (अनुवाक ४) त्र्यशीतिः ।१५।

प्रथम, दशम, पंचमाः स षष्ठस्त्रिंशत्का । द्व्यधिकौ, अपचिद्, द्वितीयौ । चतसृभिरधिकस्तु सप्तमः स्यात् । एकत्रिंशकमष्टमं वदन्ति । अष्टत्रिंशो द्वादशः[5] । प्राक् तस्मात्सप्तत्रिंशः । यः परः स चतुःषष्टिः । तृतीयचतुर्थौ त्रयस्त्रिंशत्कौ ।

---

१. अ, ब, ततो परांत्वे । व्ह, ततो परातै अथवा परांते ।

२. अ, ब, अष्टौनं ।

३. व्ह. तु ।

४. व्ह, एकत्रिषष्ठिः । व्हिटने ने स्वयं लिखा था, 'यह अस्फुट है' । वस्तुतः लेखक-भ्रम से वृषः ही त्रिष (ष्ठिः) हुआ है ।

५. अ, ब, द्वादश प्रोक्तः । अगला पद 'प्राक्' जिसके आगे 'त' है, 'प्रोक्तः' बन गया है । व्हिटने का उपर्युक्त पाठ बहुत ठीक है ।

तत एकर्चानां कीर्त्तयिष्यामि संख्याम् । अष्टावाद्ये । द्वे द्वितीये तु विद्यात् । अष्टौ तिस्रश्चाथ बोध्यास्तृतीये । द्वौ पंचर्चौ सन्निविष्टौ चतुर्थे । पंचैवोर्ध्वं विंशतेः पंचमे स्युः । द्विरेकविंशतिः षष्ठिः । त्रिंशदेका च सप्तमाः । चतुर्विंशएकविंशद्र्चाम् । परो द्वात्रिंशक उच्यते ।

एकविंशकमिहाद्य मुच्यते । सूक्तशश्च गणना प्रवर्त्तते । आद्यसहितम् । स सप्तमं वृद्धि विंशतिक मृचोऽष्ट चापराः ।।१६।।

विराड्वै तु षट् पर्याया; यो विद्यादिति षट् स्मृताः।
प्रजापतिस्तथैकः स्यात्; अयस्तस्यौदनो भवेत् ।
तुरीयमाहुरिह पंचविंशकं, कामसूक्तं[1] वरणौ तथैव च ।
पंचमे, नवदशे च, विंशतेः; द्वे ऋचौ, नवदशापरे च ।
प्राणाय, ब्रह्मचारी च; यौ ते, इन्द्रस्य प्रथमः, कुतः ।
ये बाहवः, तृतीयं तु; सप्तषड्विंशकानि तु ।
उच्छिष्टेऽघायतामन्त्यो; विंशतिः सप्त चापराः ।
इन्द्रो मन्थतु, साहस्रो; दिवश्चतुरुत्तरः ।
द्वे, तिस्रो, विंशतिः पंच; चतुर्दशश्चतुर्दश ।
चतसृः, सप्तानुपूर्वेण; शेषाः स्युस्त्रिशतैः[2] पराः ।
अष्टादश, आ नय; अग्नि ब्रूमके तिसृः, यन्मन्युः, इत्यत्र चतुर्दश च ।
एकादशैव उपमिताम् इति स्युः, तथैव रौद्रेपि परास्तु विंशतेः ।।१७।।

भौमस्त्यधिका षष्ठिः, स्वर्गः[3] षष्ठिः, नडस्तु पंचोना, सप्तभिरूना तु वशाः, ब्रह्मगवीः सप्त पर्यायाः । षष्ठिः, षड्चत्वारिंशत् षड्विंशति षट्[4] पर्यायाः । एतत्कांडे रोहितानामतोन्यत् ।

---

१. ब, व्हि, कामसूक्तः ।
२. व्हि, शतेः ।
३. अ, ब, स्वर्ग्र ।
४. अ, ब, षड्क ।

आद्यः सौर्यश्चतुःषष्ठिः पंचसप्ततिरुत्तरः ।
व्रात्याद्यः सप्त पर्याया एकादश परो भवेत् ।
प्राजापत्यो ह चतुष्कः पंचपर्याय उत्तरः ।
एकषष्ठिश्च षष्ठिश्च सप्ततिस्त्र्यधिकात्[1] परः ।
एकोन नवतिश्चैव यमेषु विहिता ऋचः ।
इत्येतत्समनुक्रान्त मृचस्त्रिंशद्विषासहिः ॥१८॥

इति चतुर्थः पटलः समाप्तः ।

१, अ, ब 'तू' नहीं है ।

पञ्चमः पटलः

आचार्यसंहितायां तु पर्यायाणामतः परम् ।
अवसानसंख्या वक्ष्यामि यावतीयत्र मिश्रिताः ।
त्रयोदश दशाष्टौ च ततः षोडश षोडश ।
विराड्वायां चतुष्कस्तु षट् पर्यायास्तु निश्चिताः । यो विद्यायाम् ।
दश सप्त च पूर्वः स्याद् द्वितीयः स्यात्त्रयोदश ।
तृतीयो नवको दृष्टः तस्माद् द्वौ दशकौ परौ ।
षष्ठं तु चतुर्दशकमाहुः षड्विंशो ब्राह्मणोगवः ।
एकत्रिंशद् भवेत्पूर्वः तस्माद् द्वासप्ततिः परः ।
तृतीयः सप्तको दृष्टो बृहस्पतिशिरस्यपि ।
वचनानि च षट् पंच षोडशैकादशाष्ट च ।
ब्रह्मगव्यां पंचदश तस्माद् द्वादशकः परः ॥१९॥ रोहित्
चतुर्थस्यावसानानि वक्ष्यमाणानि तानि शृणु ।
त्रयोदशाष्टौ च ततः परः सप्त सप्त दश षट् च बोध्याः ।
षष्ठः पंचक उच्यते ।
व्रात्यप्राजापत्योरेव संख्यां वक्ष्यामि तानि शृणु ।
अष्टौ द्व्यूना ततस्त्रिंश देकादश परो भवेत् ।
द्व्यूना तु विंशतिस्तुर्यः पंचमः षोडश स्मृतः ।
विंशतिः षट् च षष्ठश्च सप्तमः पंचक उच्यते ।
एकादशकास्त्रयोत्र बोध्याः द्वावाद्यावथ निश्चितौ त्रिकौ तौ ।
षष्ठं तु चतुर्दशात्र[1] विद्याद् दश दशमं नवमस्तु सप्तकः स्यात् ।
चत्वारि विंशतिश्चैव सप्तमो वचनानि तु ।
अष्टमं नवकं विद्यात् पंचको दशमात्परः ।
प्राजापत्यस्य सर्वस्य[2] परमस्य पुनः शृणु ।
त्रयोदशाद्यं विजानीयाद् द्वौ षट्कौ सप्तमः[3] परः ।
आद्यं दशकं[4] ह्येकादशकं तस्माच्च परं द्व्यधिकं विहितम् ।
एकादंश वै त्रिगुणान्यपरः ।
चत्वारि वै वचनानि परश्चत्वारि वै वचनानि पर इति ॥२०॥

इति पंचपटलिका समाप्ता[5] ।

---

१. अ, ब, चतुर्दशाच । २. श, पूर्वस्य । ३. श, सप्तक ।
४. अ, ब, दशकां । ५. अ, ब, समाप्तः ।

ओ३म्

भावानुवाद

प्रथम पटल

उक्तानुक्त (कहे हुए के न कहने) के जिस न्याय=नियम को परिबभ्रव (ऋषि) बोला, तथा पर्यायों और ऋचाओं के (नियम को भी) उसे हम यथाक्रम कहेंगे।

बहुत से अव्यवेत=संयुक्त=मिले हुए (मन्त्रों के) जहाँ अनेक सदृश पद (आवें) तो उनमें जो आदिष्ट=कहा हुआ (पद) हो, वही उक्तानुक्त कहाता है।

उस (उक्तानुक्त) के उत्पन्न=प्रादुर्भूत होने पर, संशब्द= आदिष्ट अर्थात् सांकेतिक पद को प्रकरण के अन्त्य में (रखे)। अन्यत्र उस के आरम्भ और समाप्ति का एक पद कहे।

अन्त्य=अन्त वाले (पद) को आरम्भण जाने (पकड़ ले) तथा आद्य को छोड़ दे। कां० २ सू० १९ में 'अग्ने यत् ते' पांच मन्त्रों के आरम्भ में आता है। वहाँ प्रथम और अन्त का मन्त्र छोड़ के, शेष, २, ३, ४ मन्त्रों में 'ते' पद को पकड़ कर 'अग्ने यत्' छोड़ देना चाहिये अर्थात् मन्त्र २ से 'ते हरे:' इत्यादि ही लिखना चाहिये। वैसे ही कां० ८ सू० १० के पर्याय २ में पूर्व ८। १०। १ में आये 'सोदक्रामत्' पद को न लिख कर 'सान्तरिक्षे' से मन्त्रपाठ लिखना चाहिये। यही यहां निदर्शन=उदाहरण है।

पुन:, जहाँ से आगे आदि वा अन्त के (पदों की) निवृत्ति होवे, उसी से वहाँ उनके सन्निहित पद कहने चाहियें। 'ते चक्रु' ५।३१।१ सक्तसप्तमी में तथा 'दिशोघायु:' ५। १०। १ यहाँ उदाहरण है।

विशेष विचार। सूक्तसप्तमी से सम्भवतः कां० ४ का अभिप्राय है। वहीं सात २ ऋचाओं के सूक्त हैं। वहाँ भी 'ते चक्रुः' ४। १७। ४ है। दोनों काण्डों के मन्त्रों के कई पद सदृश हैं। यह नियम पांचवें काण्ड में अधिक चरितार्थ होता है, अतः वहीं का प्रमाण मूल के टिप्पण में धरा गया है ॥ १ ॥

'आकार' जहाँ पर आद्य हो, वहाँ भी दो पद कहे। 'सा पितॄन्' प्रभृति पर्यायों में 'एहीति'=आ+इहि ८। १०। ४, ५ यहाँ उदाहरण है।

अवसान का एक देश जो अवसानता=अन्तता को प्राप्त होवे, वहाँ भी क्रमपाठ की समाप्ति के लिये दो पद कहे। 'यो ३ जम्=यः+अजम्' ६। ५। २२ 'स्कम्भं तम् १०। ७। ४ यह उदाहरण जाने अर्थात् इन दो दो पदों को रख के शेष पदों की निवृत्ति करे।

जो अवसान होकर पुनः अवयव हो जावे अर्थात् अवसान का भाग बन जावे, उनके अवसानों को अन्त्यों के समान उत्सर्जन करे। 'वीरुत् क्षेत्रियनाशनि' २। ८। २ यहाँ उदाहरण है। जो तुल्य अवसान हैं, वह सारा ही छोड़ दे। 'तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चत्' १०।६।७ इसमें सारा पहला अवसान और 'वै कुर्वंतम्' ९।५।३२ यहाँ तुल्य मध्यावसान सारा-सारा छोड़ दे।

पूर्वोक्त विधि में कही हुई सब (ऋचाओं में) यदि जाने तो उन सबके सदृश अवसानों को ऐसे ही छोड़ दे। 'यथा द्यौश्च' २।१५।१ 'शेरभक' २।२४।१ 'यो वै नैदाघं नाम' ९।५।१, ३१ 'यथा वातो वनस्पतीन् १०। ५। १३ यहाँ उदाहरण हैं ॥ २ ॥

नाना अवसानों वाला हो के जो पुनः एक (अवसान) में हो जावे, तो उसी से समाप्ति करनी चाहिये और एक में भी उसे पढ़े।

वि. वि. । 'अ', 'ब', में चकार और वकार का कोई भेद प्रतीत नहीं होता । 'चापि=वापि' बन जाता है । अतः इस सम्बन्ध में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता ।

इसका उदाहरण 'समिमाम्' १८।२।४४ है । वहां 'यथा परं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ।' यह दो अवसान हैं । अगले मन्त्र में ये पद एक अवसान में आते हैं । सो प्रथम मन्त्र से ही समाप्ति करे । ऐसे ही 'उत्तरस्याम्' ४।१०।८ जानें । यह उदाहरण इतना स्पष्ट नहीं ।

पर्यायों में अवसानों का ऋचाओं के समान विधि हो । जैसे 'सर्वदा' १०।९।१२ 'क्षिप्रम्' १२।६।१ यह उदाहरण है । 'अ', 'ब', में जो 'वैपरेत' पाठ है वह सन्दिग्ध है ।

अवसानों के जो गण पृथक्-पृथक् सम्बन्धार्थवाले हैं, उनमें अर्थ विधिपूर्वक जानने चाहियें । 'सोदक्रामत्' ८।१०।२ निदर्शन है । यहां गणों में समान पद दूर होने से पता नहीं लगता था, अतः ऐसाकहना पड़ा । इस भिन्न प्रकार को व्हिटने ने स्वयं जान कर यह लिखा—

"Sometimes the case is a little more intricate. Thus in viii 10, the initial words सोदक्रामत् are written only in verses 2 and 29, although they are really wanting in verses 9–17, paryaya II, (verses 8–17) being in this respect treated as if all one verse with subdivisions." (p CXX)

जो नियम अव्यवों=संयुक्तो में देखा गया है, वही असंयुक्तों में भी दिखाई देता है । वह तुल्य पृथक् पृथक् करे और उसमें वह एक बार ही पढ़े । 'यदेनमाह व्रात्य' १५।११।४ चौथे मन्त्र में उदाहरण है । यहां सातवें और नवमें मन्त्र में यह पाठ नहीं है, दशम में है, अतः यह नियम कहना पड़ा ।

इससे आगे कहे हुए नियमानुसार उत्सर्जन करे। अन्त में ऐसी से कीर्ति करे। 'ते वश' निदर्शन है। इस उदाहरण का पता नहीं लगा ॥३॥

यदि पुनः ऋचाएं तुल्य—सदृश हों, तो जहां तक उनका विशेषण हो, वहां तक शास्त्र-विधि अनुकूल उन्हें पृथक् करे।

उससे आगे संख्या का प्रयोग करे। 'या शशाप' १।२८।३ तथा ४।१७।३ यहां उदाहरण है। यह मन्त्र दो स्थलों में आया है। उत्तर स्थल में मन्त्रप्रतीक देकर 'एका' आदि संख्या का प्रयोग करे। 'सं वो मनांसि' ३।८।५ तथा ६।९४।१ में आया है। वहां भी ऐसे ही करे।

जहां संदेह हो कि एक ही मन्त्र दोबारा आया है या दो साथ साथ वाले मन्त्र हैं तो 'पूर्वा' का विशेषण देवे। 'यास्ते धाना' १८।३।६९ तथा १८।४।२६ में आया है। दोनों स्थलों में इससे पूर्व मन्त्र भी सदृश हैं।

जहां दो मन्त्र एकत्र आवें और जहां उनके आगे दो मन्त्रों में सदृश प्रतीक हों, तो कौन-सा अभिप्रेत है, यह संदेह मिटाने के लिये उत्तर स्थल में आदि में पाठ करे। 'पूर्वापरं' ७।८१।१ तथा १३।२।११ और १४।१।२३ में प्रतीक है। इसके आगे 'नवो नवः' ७।८१।२ और १४।१।२४ में आया है। यहां १३।२।१ की शंका दूरीकरणार्थ यह नियम है।

एक, दो, तीन ऋचाएं जहां एकत्र आवें और वैसे ही आगे भी आवें, तो उत्तर स्थलों में 'एका' 'द्वे' 'तिस्रा' यह लिख दे। वर्ग आदि में भी वैसा ही करे। शेष अर्थ किसी हस्तलिखित संहिता को न देखने से पूर्ण स्फुट नहीं।

प्रथम पटल समाप्त हुआ।

द्वितीय पटल

अब छन्द = अथर्वसंहिता में भाव = काण्ड, सूक्तादि की स्थिति कहेंगे। तीन प्रकार वाले सूक्तवर्णक, ऋक्यपर्यायिक और यजुओं के अवसान को जानने के लिये व्याख्यान करेंगे। पहले चार काण्डों में पांच सूक्तों के अनुवाक हैं, छः अनुवाकों को छोड़कर। अर्थात् काण्ड १अ. १, ५, ६। कां. २ अ. ३, ४। कां. ३ अ. ६।

इन छः अनुवाकों को छोड़कर शेष सब पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं। महत् अर्थात् पंचम काण्ड में एक अर्थात् अनुवाक ४ को छोड़कर शेष पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं। तृचों अर्थात् तीन ऋचा वाले छठे काण्ड में प्रति अनुवाक दश (१०) सूक्त का है। पर पांच आपवादिक अनुवाक हैं। ३, ७, ११, १२ और १३। इनमें प्रथम चारों में ११ सूक्त और अन्तिम में १८ सूक्त हैं। एक ऋचा वाले सप्तम काण्ड में एक एक ऋचा वाला सूक्त है।

क्षुद्रों अर्थात् ८वें से ११वें काण्ड तक दो दो सूक्त वाले अनुवाक हैं। १२, १३, १४ काण्डों में प्रत्येक अनुवाक एक एक सूक्त वाला है।

१७वें अर्थात् शेष काण्ड में एक सूक्त के एक ही अनुवाक का काण्ड है। यह पूर्वोक्त क्रम पर्यायों को छोड़ के है। 'व्रात्य और 'प्राजापत्य' अर्थात् १५ तथा १६ काण्ड का पृथगुत्तर कहा है। सूक्तावस्था यथा काण्ड (आगे कही हुई) है। वहां न प्रत्युपाय और न दुर्याण्य है। यह पाठ अस्पष्ट है। अपवाद अधिक हैं। महत् अर्थात् पञ्चम काण्ड में काण्ड-समवाय आठ ऋचा वाले सूक्तों का है ॥५॥

आगे प्रतीक धर के यह बताया है कि जो अपवाद पूर्वोक्त प्रसङ्ग में बताए गये थे, उनमें किसी काण्ड के किस अनुवाक

में कितने सूक्त हैं। आगे एकर्च=सप्तम काण्ड में प्रत्येक अनुवाक कितने सूक्तों का है यह कहा है। अर्थ बहुत सरल होने से नहीं कहा।

१, २, ३, ४, ५, ६ तथा ७ काण्ड में प्रतिसूक्त क्रमशः ४, ५, ६, ७, ८, ३ तथा १ ऋचा वाले हैं। उनके अपवाद खण्ड सात से आरम्भ होते हैं। वे प्रतीक धर के सब गिना दिये गये हैं। सो सारे मूल में देखने चाहियें।

मुम्बई संस्करण में सूक्त ७६ को चार वा दो ऋचा वाले दो सूक्तों में विभक्त किया है, परन्तु पटलिका में इसके लिये कोई प्रमाण नहीं।

द्वितीय पटल समाप्त हुआ।

तृतीय पटल

खण्ड दश का अन्तिम श्लोक अशुद्ध प्रतीत होता है। किसी लिखित ग्रन्थ के आधार के बिना इस का यथार्थ पाठ नहीं ढूंढा जा सकता।

खण्ड ११ से एक अवसान, तीन अवसान, चार अवसान और पांच अवसानों वाली ऋचाओं की प्रतीकें धरी हुई हैं। कई मन्त्र बर्लिन संस्करण में दो अवसानों वाले हैं। मुम्बई संस्करण के सम्पादक ने उन्हें प्रायः पञ्चपटलिकानुसार कर दिया है।

तृतीय पटल समाप्त हुआ।

चतुर्थ पटल

(१) आद्य (काण्ड) के प्रथम (अनुवाक) में ऋचाएं ९ (अधिक हैं २० से, ऐसा) जाने। ५+२० अगले में। पांचवें में ८+२०। ११+२० अगले में हैं। बीस से (आदर्श) करते हैं। बीस इनसे दूसरों में।

प्रथम काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सबकी ऋचा—संख्या क्रमशः यह बनी। २९+२५+२०+२०+२८+३१=१५३। प्रथम काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श चार है।

(२) पांच ऋचा वालों में से आद्य अनुवाक (में) हैं बीस से नौ ऊपर अर्थात् २९। ऐसे में ही अन्त्य से पूर्व। ८+२० करे दूसरे में। आठ कम, उस सौ के अर्ध से तीसरे में (अर्थात् ५०—८=४२)। दो कम पचास से चतुर्थ। तीस से एक अधिक अन्त का।

दूसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सबकी ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। २९+२८+४२+४८+२९+३१=२०७। दूसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श पांच है।

(३) तीस का निमित्त (आदर्श) छः ऋचा वाले (सूक्तों में) करना चाहिये। तीन, दश, आठ, दश और पांच और चौदह अन्त वाले में। (इस प्रकार) अनुवाक के पीछे अनुवाक में यथाक्रम संख्या जाने, अधिक निमित्त से।

तीसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। ३३+४०+३८+४०+३५+४४=२३०। तीसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श छः है।

(४) सात, नौ, इक्कीस, तब करे बारह। आगे पाँच, छः

और सात भी जानने चाहियें। सतारह वाला अन्त का। छः ऋचा वाले के समान।

चौथे काण्ड में आठ अनुवाक हैं। उन सबकी ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। ३७+३९+५१+४२+३५+३६+३७+४७=३२४। चौथे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श सात है।

(५) प्रथम से परला ग्यारह कम साठ। दो छः अर्थात् बारह कम साठ वाला प्रथम। तीन कम साठ वाला तीसरा। छठे में नौ और एक और साठ। परले में साठ और नौ। उससे भी परले 'एक वृषोसि' वाले में तीन और अस्सी।

पांचवें काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सबकी ऋचा—संख्या क्रमशः यह बनी। ४८+४९+५७+८३+६९+७०=३७६ । पांचवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श आठ है।

(६) प्रथम, दशम और पञ्चम अनुवाकों में, वह छठा तीस वाला। दो अधिक तीस से 'अपचिद्' अर्थात् नवम अनुवाक में (और इतनी ही) दूसरे अनुवाक में। चार अधिक तीससे सातवां है। इकत्तीस वाले आठवें को कहते हैं। अड़तीस वाला बारहवां। उससे पहला सैंतीस वाला। जो अगला वह चौसठ वाला। तीसरा और चौथा तैंतीस वाले।

छठे काण्ड में तेरह अनुवाक हैं। उन सबकी ऋचा—संख्या क्रमशः यह बनी। ३०+३२+३३+३३+३०+३०+३४+३१+३२+३०+३७+३८+६४=४५४। छठे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श तीन है। इन्हीं सूक्तों को तृच कहते हैं।

ह्विटने नें छठे अनुवाक के सम्बन्ध में जो पाठ सर्वानुक्रमणी से उद्धृत किया है, वह उसके टिप्पण सहित यह है—'षष्ठो त्रिंशत्को (पढ़ो, त्रिंशको ?)

(७) इससे आगे एक ऋचा वाले सूक्तों का कीर्त्तन करूँगा संख्या। आठ (बीस से अधिक) प्रथम (अनुवाक) में। दो दूसरे में जाने। आठ और तीन जानने चाहियें तीसरे में। दो बार पांच अर्थात् दश ऋचाएँ सन्निविष्ट हैं चौथे में। पांच अधिक बीस से पांचवें में हैं। दो बार इक्कीस छठे में। इकत्तीस सातवें में। चौबीस, इक्कीस से। अगला बत्तीस वाला कहा जाता है।

सातवें काण्ड में दश अनुवाक हैं। उन सबकी ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। २८+२२+३१+३०+२५+४२+३१+२४+२१+३२=२८६। सातवें काण्ड के सूक्तोंमें ऋचा-आदर्श एक है।

प्रथम सात काण्डों में कुल ऋचा—संख्या—१५३+२०७+२३०+३२४+३७६+४५४+२८६=२०३० अर्थात् दो सहस्र तीस मन्त्र।

इस खण्ड की समाप्ति यहाँ होनी चाहिये क्योंकि आगे नई गणना आरम्भ होती है।

इक्कीस ऋचा वाला (आठवें काण्ड का) प्रथम (सूक्त) कहा जाता है। (आगे) गणना सूक्त-क्रम से प्रवृत्त होती है। आद्य के साथ। वह सातवां सूक्त अठाईस ऋचा वाला है ॥१५॥

(अष्टम काण्ड के नवम सूक्त से आगे) 'विराड् वा' छः पर्याय हैं। (नवम काण्ड के पांचवें सूक्त से आगे) 'यो विद्यात्' छह पर्याय हैं। (इनसे अगला ही अर्थात् तृतीय अनुवाक के आगे) 'प्रजापतिः' वाला एक पर्याय है अर्थात् तृतीय है। (इनसे परे एकादश काण्ड के दूसरे सूक्त से आगे) 'तस्यौदनस्य' वाले तीन पर्याय हैं।

(कां. ८ का) चतुर्थ सूक्त यहां पच्चीस ऋचा वाला कहा जाता है। (इतनी ऋचा वाला ही) कामसूक्त (कां. ९ सू. २) तथा 'अयं मे वरणो' (१०।३) है।

अ, ब और व्ह में "वरणौ" पाठ है। ह्विटने ने 'वरणो' पाठ रखने की सम्मति दी है।

(काण्ड आठ के) पांचवें और उन्नीसवें (अर्थात् काण्ड नवम के नवम सूक्त) में बाईस ऋचाएँ हैं और उन्नीसवें से पहले (अर्थात् कां. ९ सू. ८) में भी (बाईस ही)।

'प्राणाय' ११।४ और 'ब्रह्मचारी' ११।५ 'यौ ते' ८।६, 'इन्द्रस्य प्रथमः' १०।४, 'कृतः' ८।९' 'ये बाहवः' ११।९ तथा ८।३ ये सात छब्बीस ऋचा वाले हैं।

'उच्छिष्टे' ११।७, 'अघायतम' १०।९ और अन्त्य का ११।१० सत्ताईस ऋचा वाले हैं। 'इन्द्रोमन्थतु' ८।८, 'साहस्रः' ९।४, 'दिवः' ९।१ चार अधिक (बीस से अर्थात् चौबीस) ऋचा वाले हैं।

दो (अधिक तीस से) १०।१, तीन (+तीस) १०।२, बीस (+तीस) १०।५, पांच (+तीस) १०।६, चौदह (+तीस) १०।७, चौदह (+तीस) १०।८, चार (+तीस) १०।१०, सात (+तीस) आनुपूर्वी से, शेष हैं तीस से परे ११।१।

अठारह (+बीस) 'आ नय' ९।५, 'अग्नि ब्रूमः' ११।६, तीन (+बीस) और 'यन्मन्युः', ११।८ यहाँ चौदह (+बीस) वाला है। ग्यारह (+बीस) 'उपमिताम्' ९।३ है। वैसे ही इकत्तीस वाला रुद्र सूक्त ११।२, यहाँ संख्या बीस को आदर्श मान के उससे ऊपर कही है ।।१६।।

पहले विभाग में गणना अनुवाक-क्रम से थी। इस विभाग में सूक्त-क्रम से हो गई है। यहाँ दूसरे सूक्त के सम्बन्ध में 'आद्य

सहितम्' लिखा है। इसका अर्थ इतना स्पष्ट नहीं। इस गणना में पर्याय तो गिन दिये गये हैं, परन्तु उनके अवसानों की संख्या अन्तिम पटल में दी गई है, अतः वह वहीं गिनी जायगी।

पूर्वोक्त ८-११ काण्ड तक की ऋचा-गणना क्रमशः यह बनी।

सू०	कां० ८	कां० ९	कां० १०	कां० ११
१	२१	२४	३२	३७
२	२८	२५	३३	३१
३	२६	३१	२५	पर्याय
४	२५	२४	२६	२६
५	२२	३८	५०	२६
६	२६	पर्याय	३५	२३
७	२८	पर्याय	४४	२७
८	२४	२२	४४	३४
९	२६	२२	२७	२६
१०	पर्याय	२८[1]	३४	२७
	२२६	२१४	३५०	२५७

भौमः—भूमि देवता वाला १२।१ तिरसठ वाला। स्वर्गः १२।३ साठ वाला। नडः १२।२ पाँच कम अर्थात् पचपन वाला।

१. यह गणना मूल में नहीं मिलती। प्रतीत होता है भूल से रह गई है।

वश (देवतात्मक) सात कम अर्थात् तरेपन वाला। ब्रह्मगवी देवता वाले सात पर्याय (आगे)।

साठ १३।१, छयालीस १३।२, छब्बीस १३।३, आगे छः पर्याय। यह तेरहवाँ काण्ड रोहित देवता वाला है।

(कां. १४ का) प्रथम (अनुवाक—सूक्त) सूर्य देवता वाला चौंसठ वाला। पचहत्तर वाला अगला।

(कां. १५) व्रात्य काण्ड कहाता है। उसके आरम्भ में सात पर्याय हैं, और उनसे आगे ग्यारह। इसमें दो अनुवाक हैं। उन्हीं के अन्तर्गत ये दो पर्याय—समूह हैं।

प्राजापत्य (कां. १६) में भी दो अनुवाक हैं। उनमें चार और पांच पर्याय क्रमशः हैं।

इकसठ, साठ, तिहत्तर, नवासी, क्रमशः ऋचा-संख्या यम अर्थात् काण्ड अठारह के चार अनुवाकों में है।

यहाँ तक ठीक अनुक्रम कहा गया है। तीस ऋचाएँ 'विषासहिम्' प्रतीक वाले सतारहवें काण्ड में हैं। इसमें एक ही अनुवाक है।

सू०	कां० १२	कां० १३	कां० १४	कां० १८	कां० १७
१	६३	६०	६४	६१	३७
२	५५	४६	७५	६०	
३	६०	२६		७३	
४	५३	पर्याय		८९	
५	पर्याय				
	२३१	१३२	१३९	२८३	३७

चतुर्थ पटल समाप्त हुआ।

पञ्चम पटल

इस से आगे आचार्यसंहिता में जो पर्यायों के अवसानों की काण्डों में मिश्रित संख्या है, उसे कहूंगा।

तेरह, दश, आठ, तत्पश्चात् सोलह, सोलह, 'विराड् वा' वाले में, तब चार, यहाँ छः पर्याय निश्चित् हैं।

अष्टम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या—१३+१०+८+१६+१६+४=६७।

नवम काण्ड में 'यो विद्यात्' के पर्याय में अवसान-संख्या—पहला सतरह वाला है। दूसरा है तेरह वाला। तीसरा नौ वाला देखा गया। उसके आगे दो दश दश वाले हैं। छठा चौदह वाला है। अगला ब्रह्म की गौ वाला छब्बीस वाला है।

नवम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या—

१७+१३+९+१०+१०+१४=७३।

७३+२६=९९।

(काण्ड दश में कोई पर्याय नहीं। काण्ड ग्यारह में सूक्त दो से आगे एक पर्याय-समूह है। उसमें) इकत्तीस वाला पहला है। उससे आगे बहत्तर वाला है। तीसरा सात वाला 'बृहस्पति शिरः' वाले पर्यायों में है।

एकादश काण्ड के अवसानों की कुल संख्या—३१+७२+७=११०।

दूसरे पर्याय पर व्हिटने का नोट (पृ. ६२८) पर देखो। उसके अनुसार बर्लिन संस्करण में यह दूसरा पर्याय केवल अठारह गणों या दण्डकों में ही विभक्त है।

पटलिका के दूसरे विभाग की कुल संख्या—

ऋचा संख्या—२२६+२१४+३५०+२५७=१०४७।

अवसान संख्या—६७+९९+११०=२७६।

दोनों की मिली हुई संख्या—१०४७+२७६=१३२३।

ब्रह्मगवी देवतात्मक २२।५ के पर्यायों में वचन हैं,—छः, पांच, सोलह, ग्यारह और आठ। उससे आगे पन्द्रह और फिर बारह।

बारहवें काण्ड के कुल वचनों की संख्या—६+५+१६+११+८+१५+१२=७३।

रोहित अर्थात् काण्ड तेरह के चौथे अनुवाक के जो कहे जाने वाले अवसान हैं, उंन्हें सुनो। तेरह और आठ। उनसे आगे सात, सतरह, छः। छठा पर्याय पांच वाला कहा जाता है।

तेरहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की कुल संख्या—१३+८+७+१७+६+५=५६।

चौदहवें काण्ड में कोई पर्याय नहीं।

अब 'व्रात्य' और 'प्राजापत्य' अर्थात् काण्ड १५, १६ के अवसानों की संख्या कहूंगा, उन (अवसानों) को सुनो! आठ, आगे दो कम तीस, अगला ग्यारह वाला है। चौथा दो कम बीस वाला, पंचम सोलह वाला है। छठा छब्बीस वाला, सातवां पांच वाला कहलाता है। दूसरे अनुवाक के तीन पर्याय (३, ४, ५) ग्यारह वचनों वाले जानो। निश्चय ही दो आदि के तीन तीन वचनों वाले हैं। छठे को चौदह वाला जानें। दशम दश वाला, नवम सात वाला है। सातवें में चौबीस वचन हैं। आठवां नौ वाला जानें। दशम से अगला ग्यारहवां पांच वाला है।

पन्द्रहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—

प्रथमानुवाक में—८+२८+११+१८+१६+२६+५=११२।

द्वितीयानुवाक में-३+३+११+११+११+१४+२४+९+७+१०+५=१०८। कुल संख्या—११२+१०८=२२०।

प्राजापत्य काण्ड के प्रथमानुवाक[1] और फिर द्वितीयानुवाक के सम्बन्ध में सुनो। पहले तेरह वाला जानें, दूसरा और तीसरा छः छः वाले, सात वाला अगला चौथा। (यहाँ प्रथमानुवाक समाप्त हुआ)। पहला दश वाला, अगला ग्यारह वाला, उससे अगला तेरह वाला। अगला तीन गुणा ग्यारह अर्थात् तेंतीस वाला। अगले में चार वचन हैं। दो बार पाठ ग्रन्थ समाप्त्यर्थं है ॥१९॥

सोलहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—
प्रथमानुवाक में—१३+६+६+७=३२।
द्वितीयानुवाक में—१०+११+१३+३३+४=७१।
कुल संख्या—३२+७१=१०३।

पटलिका के तीसरे विभाग की ऋचा संख्या—२३१+१३२+१३९+२८३+३७=८२२।

अवसान संख्या ७३+५६+२२०+१०३=४५२।
दोनों की मिली हुई संख्या—८२२+४५२=११७४।

पञ्च पटलिकानुसार अठारह कण्डों के मन्त्रों और वचनों की कुल संख्या—२०३०+१३२३+१२७४=४६२७।

पञ्चम पटल समाप्त हुआ।

पञ्चपटलिका का भावानुवाद समाप्त हुआ।

---

१. मूल में सर्वस्य पाठ के स्थान में पूर्वस्य ही युक्त है।

पटलिकान्तर्गत मन्त्र-प्रतीकानुक्रमणी

(अङ्कों से खण्ड अभिप्रेत हैं)

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है ।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।।